चौथा अध्याय

उपेंद्रनाथ 'अश्क' के एकांकियों में चित्रित समस्याएँ

उपेंद्रनाथ 'अश्क' के एकांकियों में चित्रित समस्याएँ

उपेंद्रनाथ अश्क जी एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। आप हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार एवं एकांकीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। अश्क जी ने केवल मनोरंजन के लिए ही अपने एकांकियों का निर्माण नहीं किया है। उनके एकांकी में मध्यवर्गीय समाज जीवन की ज्वलंत समस्याओं को चित्रित किया है। उनके एकांकियों में भले ही मानव-समस्याओं को हल नहीं किया है, परंतु ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि प्रेक्षक एवं पाठक स्वयं समस्या का हल खोजन के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। अश्क जी ने जिस समस्या का स्पर्श किया है, उसे सजीव बना दिया है। उनके एकांकियों में सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक समस्याएँ निम्नांकित हैं।

4.1 सामाजिक समस्या -

4.1.1 समाज : परिभाषा एवं स्वरूप -

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार पर तत्कालीन, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों का गहरा प्रभाव होता है। साहित्यकार युग-दृष्टा तथा युग सृष्टा होते हैं।

साहित्य और समाज का वैचारिकी का निर्माण करता है। समाज साहित्य से विच्छिन्न होकर जी नहीं सकता। समाज का प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। ''साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। एक ओर साहित्य समाज परिष्कार का कार्य संपन्न करता है, तो दूसरी ओर समाज की प्रत्येक स्थिति साहित्यिक विचारधारा के प्रादुर्भाव का कारण बनती है।''[1] साहित्य तत्कालीन समाज की नब्ज को पहचानकर उसमें चेतना भर देने का काम करता है। साहित्य का मर्म संस्कृति की समग्रता की अभिव्यक्ति और समृद्धि में निहित है। साहित्य संस्कृति के मूल्यों का वाहक है।

समाज में तरह-तरह के मनुष्य होते हैं। समाज सह अस्तित्त्व की विकासमान प्रक्रिया है। समाज के सदस्यों में परस्पर निकटता, आत्मियता उत्पन्न करती है और उन्हें एक

दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनाती है। पारस्पारिक हित एवं सूरक्षा समाज व्यवस्था का गुण है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैका इव्हर तथा पेज समाज की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि "समाज कार्य प्रणालियों और चलनों की अधिकार सत्ता और पारस्पारिक सहायता की अनेक समूह व श्रेणियों की तथा मानव व्यवहार के नियंत्रणों अथवा स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। इस निरंतर परिवर्तनशील व जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।"[2]

समाज व्यक्ति से श्रेष्ठ है। समाज कायदे-कानून पर रीति-नीति पर अवलंबित होता है। धर्मराज सिंह के मतानुसार - "व्यक्ति की सामूहिक इकाई है समाज।"[3] समाज मानव संबंधों के साथ हमेशा जुड़ा है। सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के लिए मानव शिष्टाचारों एवं नैतिक आदर्शों का पालन करता है। समाज एक ऐसी नियमावली है जिसका उल्लंघन करनेवालों को समाज की रेखाओं से बाहर कर दिया जाता है। डॉ. विमल भास्कर की दृष्टि से "समाज मानवों के संगठन की ऐसी इकाई है जिसका खंड़न भी कभी संभव नहीं हो सकता। इस समाज का प्रत्येक प्राणी सामाजिक है।"[4]

समाज संबंधों का समूह है। समाज मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। समाज से अलग मनुष्य का अस्तित्त्व नहीं है। समाज मनुष्य को अपनी सीमा रेखाओं में कैद कर रखना चाहता है। "किसी प्रदेश के निवासियों की ऐसी जटिल व्यवस्था को जिसमें वे व्यावसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक या राजनैतिक संबंधों की दृष्टि से अंतर्संबंद्धित रहते हैं, इसे समाज कहते हैं।"[5] मनुष्य समाज से जुड़कर ही अपने अस्तित्त्व को पहचान सकता है।

विभिन्न विद्वानों के समाज संबंधी मतों के अवलोकन से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि समाज का ऐसा संगठन है जिसमें सामाजिक संबंध होते हैं। मानव की सामुदायिक चेतना समाज की देन होती है।

4.1.2 वर्ग -

आधुनिक काल में समाज का संगठन विभिन्न वर्गों पर आधारित रहता है। वर्ग शब्द का अर्थ प्रमुख रूप से मानव जाति का एक समूह जो आर्थिक दृष्टि से समान हो, माना जाता है। जैसे समाज विघटित होने लगा वैसे ही वर्ग वर्गों में विभाजित होने लगा। आर्थिक दृष्टि से

असमानता के कारण कोई अमीर तो कोई गरीब दिखाई देता है। साथ ही औद्योगिकरण के कारण समाज में इन दो वर्गों के आलावा मध्य वर्ग निर्माण हो जाने के कारण समाज शास्त्रियों ने समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया है। ये तीन वर्ग निम्नलिखित हैं -

4.1.2.1 उच्च वर्ग -

उच्च वर्ग के अंतर्गत जमींदार, पूँजीपति, साहुकार, व्यापारी, मिल-मालिक, बड़े-बड़े उद्योगपति, उच्च पदस्थ अधिकारी, नेता आदि आते हैं। जो निम्न वर्ग का शोषण करते हैं।

4.1.2.2 मध्य वर्ग -

मध्य वर्ग के अंतर्गत, महाजन, कर्मचारी, छोटे व्यापारी, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर आदि मध्य वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इस वर्ग की विशेषताएँ - बौद्धिक, अनैतिकता, आत्मकेंद्रित, असामाजिक का समर्थन, आस्था का खोखलापन आदि है। इस वर्ग में विलास एवं विशृंखला अधिक है। साथ ही वासना तथा व्यापार की वृत्ति ज्यादा है। इस वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पड़ा है, जिसके कारण इस वर्ग में अंधानुकरण बढ़ने लगा है। इस वर्ग के व्यक्तियों में स्वप्नवादिता दिख पड़ती है। शायद इसका कारण अभावग्रस्त जीवन रहा है।

4.1.2.3 निम्न वर्ग -

भारत के देहातों में किसानों एवं मजदूरों की स्थिति हमेशा दयनीय रही है जो निम्नवर्गीय है। यह राजा, जमींदार, महाजन, ब्राह्मण, साहुकार तथा सरकारी अधिकारियों के अत्याचारों से पीड़ित रहा है। यह प्राचीन काल से चला आ रहा है कि उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता रहा। जैसे औद्यागिक क्रांति हो गई और कारखानों का निर्माण हो गया, उससे देहात के व्यवसाय ठप्प हो गए। एक-एक सभी पेशेवर लोग शहरों की ओर भागने लगे और वहाँ जाकर उन्हें मजदूर बनना पड़ा। इसी वजह से वे उच्च वर्ग के अधीन बन गए। फलतः उनके जीवन में दुख, दैन्य, दारिद्रय और घुटन छा गई। निर्धनता, अविश्वास और संदेह, विवशता और दुर्दशा, अत्याचार, विद्रोह, विजय की आशा ये निम्न वर्ग की विशेषताएँ मानी जाती हैं।

शहरों की तुलना में गाँवों की जनता अधिक शोषित रही है। शहरों में जो मजदूर या नौकर के रूप में रहने लगे। अतः उपेंद्रनाथ अश्क जी के एकांकियों में सामाजिक समस्याएँ निम्नांकित हैं -

4.1.3 घरेलू नौकरों की समस्या -

आधुनिक काल में नौकरों की समस्या अत्यधिक तीव्रतम बनती जा रही है। आज कल घर के काम के लिए परिश्रमी और प्रामाणिक नौकर मिलना बहुत कठिन हो गया है। नौकरों पर मालिकों के अन्याय-अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। पहले नौकरों को परिवार का एक सदस्य माना जाता था लेकिन वर्तमान युग में नौकरों को स्थान नहीं दिया जाता है।

'सयाना मालिक' एकांकी में ईमानदार नौकर न मिलने से लोगों को कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ होती हैं इसका चित्रण किया है। लीकू ने घर का काम करने के लिए एक नौकर रखते हैं। और अभी दो-तीन दिन ही हुए हैं। एक दिन लीकू का नौकर घर का सारा बर्तन लेकर चला जाता है। उनके सभी पड़ोसी गुप्ता के घर बैठकर लीकू का मजाक उड़ाते हैं। गुप्ता का दावा है कि वे नौकर 'एम्प्लायमेंट एक्सचेंज' से लेते हैं और स्वयं भी पूरी सावधानी रखते हैं। इससे उन्हें नौकर द्वारा धोखा होने की कोई आशंका नहीं है। उनका दावा उस समय निराधार सिद्ध होता है, उनका नौकर चार हजार रुपए लेकर भाग गया है। गुप्ता साहब नौकरों के बारे में बहुत सावधानी बरतते हैं। इसलिए वे कहते हैं - ''मैं हमेशा नौकर का पता नहीं नोट करता, पुलिस से वेरीफाई भी करा लेता हूँ।''[6]

'अधिकार का रक्षक' एकांकी में मि. सेठ के घर की सफाई करनेवाले नौकर को दो महिने से वेतन नहीं मिला है। भगवती रसीइए की उन्होंने कभी एक बार में पूरा वेतन नहीं दिया है। वे अपने नौकरों पर पैसे माँगने पर कहते हैं - ''जा एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से। जाकर पुलिस को रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सुअर! आज तक सब्जी में, दाल में, सौदा सुफल में, यहाँ तक की बाजार में से आनेवाले हर चीज में पैसा रखता रहा। हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकड़ता है।''[7] इस प्रकार मालिक लोग नौकरों पर अन्याय, अत्याचार करते हैं।

4.1.4 सिनेमा जगत की समस्या -

आजकल की युवा-पीढ़ी पर सिनेमा जगत का जबरदस्त प्रभाव दिखाई देता है। विशेषत: सिनेमा के भद्दे फूहड़ गीत गुन-गुनाना, अभिनेता या अभिनेत्री के पोशाक का अनुकरण करना तथा प्रेम-प्रदर्शन के विभिन्न तरीकों को अपनाना, आजकल की युवा पीढ़ी का फॅशन बन गया है। इसके भले-बुरे परिणाम अन्यत्र देखने को मिलते हैं।

'मस्के बाजों का स्वर्ग' इस एकांकी में सिनेमा संसार ऐसी जगह है यहाँ योग्यता को महत्त्व नहीं दिया जाता है। प्रतिभाशाली व्यक्ति की संपूर्ण योग्यता यहाँ व्यर्थ हो जाती है। यहाँ तिकड़मी कलाकारों द्वारा कला और संस्कृति की हत्या हो रही है और असामाजिक तत्त्वों को प्रश्रय दिया जाता है। आजकल सिनेमा से राष्ट्रीय संस्कृति का पतन हो रहा है, उसका मूल कारण पूँजीपति है। जिन्हें कला, साहित्य, संस्कृति और संभवत: देश की कोई चिंता नहीं है। यह सीधी-सी बात है कि पैसे को ही सब कुद माननेवाले कला और संस्कृति के विकास की चिंता नहीं करते हैं। अत: जब तक इस क्षेत्र में उनका अधिपत्य रहेगा तब तक स्वस्थ कला की आशा नहीं की जा सकती।

'अंधी गली' इस एकांकी में सिनेमा के नायक और नायिका आज के युवक-युवतियों का आदर्शन बन गए हैं। उनके काल्पनिक कृत्यों का अनुसरण करने में वे अपने आपको भूल जाते हैं। रामचरण अपने लड़के की स्थिति का विवेचन करते हुए कहते हैं - ''आज मैंने उसके हाथ में बासुरी देखी तो उसे तोड़कर आग में फेंक दिया और उसे समझाया कि बेटे कृष्ण और गोपियों का युग समाप्त हो गया। यदि तू सोचता है कि तू बंशी बजाएगा और गली की सभी लड़कियाँ सुध-बुध खोकर बाँसुरी पर फिदा होने चल पड़ेंगी तो तुझ से बड़ा मूर्ख और काई नहीं है। यथार्थ की दुनिया में बसना सीख और हाथ में बासुरी लेने से पूर्व अपने बापके जेब का ध्यान कर लिया कर।''[8]

फिल्मी व्यवसायियों का उद्देश्य पैसा अर्जित करना है। फिल्मी डाइरेक्टर अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे देश में फिल्म शौकिन अधिकतर गरीब, अनपढ़, आवारे या कुँवारे हैं और जो चीज उनके जीवन में संभव नहीं हो सकती है, वही वह पर्दे पर संभव कर दिखाते हैं। आज युंवक अपनी सुध-बुध खोकर उसी का अनुकरण करते हैं। वे उन घटनाओं में उतना विकास करते

हैं कि अपने जीवन में उनका प्रयोग भी करने लगते हैं। सुरेश इसी आदर्श का उल्लेख करते हुए अपनी चाची से कहते हैं - ''मैं कभी प्रेम करूँगा तो अपनी प्रेमिका को पा लूँगा, नहीं तो फिल्म 'दिल्लगी' में जैसे श्याम और जुगनू में, जैसे दिलीप अपने प्रेम के लिए कुर्बान हो जाते हैं वैसे ही मैं भी कुर्बान हो जाऊँगा।''[9] अंततः दुआ भी वही। नीति से अलग कर दिए जाने पर सुरेश गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार आज की फिल्मी जगत की वास्तविक स्थिति है।

4.1.5 शरणार्थियों की समस्या -

देश विभाजन के पश्चात् एक बहुत बड़ी समस्या निर्माण हो गई - वह थी शरणार्थियों की समस्या। कई मुसलमानों ने भारत-पाकिस्तान के विभाजन के पश्चात् भारत में शरण ली थी। इनके रहने का इंतजाम करना बहुत ही मुश्किल हो गया था।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' 'अंधा गली' इस एकांकी में शरणार्थियों की समस्या का अत्यंत मार्मिक और जीवंत चित्रण खिंचा है। इस एकांकी में शरणार्थी - पुनर्वास संबंध में अधिकारियों की वृत्ति, रिश्वतखोरी, पक्षपात एवं अन्याय का चित्रण किया है। विभाजन के बाद अपना सब कुछ खोकर लाखो शरणार्थी भारत में आए। उनके पुनर्वास और जीविका का प्रबंध करने का सरकार ने पूरा प्रयत्न किया, पर हमारे भ्रष्ट अधिकारियों का सरकार ने पूरा प्रयत्न किया पर हमारे भ्रष्ट अधिकारियों के कारण उन्हें उसका अपेक्षित लाभ नहीं मिला। शरणार्थियों को मकान की समस्या का समाना करना पड़ा है। गलियों और बरामदों में वे जीवन व्यतीत करते रहे। उनके उस समय में मित्रों से भी सहायता नहीं मिलती थी। शरणार्थियों की विवशता देखकर मकान-मालिक तिगुना-चौगुना किराया माँगते हैं। सरकारी अधिकारी इन मामलों को सुलझाने के लिए रिश्वत लेते हैं। बेचारे शरणार्थी दिन-दिन भर मकान की खोज में दौड़ते रहते हैं। एक-एक घर में चार-चार परिवार रहते हैं। उनको कुछ चैन नहीं है और कुछ शांति नहीं है। शरणार्थियों की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए त्रिपाठी कहते हैं - ''शरणार्थियों पर जो बीती है, जो बीत रही है.... उनके बड़े-से-बड़े हिमायती भी उनके दुःख का अंदाजा नहीं लगा सकते। देश का बँटवारा कर बड़ी-बड़ी गद्दियाँ संभालने वाले और शरणार्थियों को बड़े-बड़े लेक्चर देनेवाले नेता तो क्या समझेंगे।''[10] महानगरों की समस्याओं में सबसे गंभीर समस्या मकान की है। महानगरों में नौकरी और दो वक्त की रोटी

की समस्या तो हल हो सकती है लेकिन मकान मिलना बहुत ही मुश्किल है। इस प्रकार शरणार्थियों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

4.1.6 आज की शिक्षा पद्धति की समस्या -

दिन-ब-दिन शिक्षा का क्षेत्र और उसका महत्त्व बढ़ रहा है। लेकिन गरीब निम्नवर्गीय लोगों को शिक्षा आज भी नहीं मिल रही है। शिक्षा लेना सिर्फ उच्चवर्गीयों की पैतृक संपत्ति बन गई है। गरीब लोग आर्थिक अभाव के कारण बच्चों को अच्छे स्कूलों में दाखिल नहीं कर सकते हैं। वे अनपढ़ एवं गँवार ही रह जाते हैं। वे अर्थाभाव के कारण बचपन से होटल में काम करने लगते हैं और एक बार पैसों के जाल में अटक गए तो जिंदगी भर उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। डॉ. महेंद्र भटनागर शिक्षा के बारे में लिखते हैं - मानव जीवन को सुसंस्कृत करने और उसे पूर्ण विकास की ओर ले जाने में शिक्षा का स्थान सर्वोपरी है।

'अंधी गली' इस एकांकी में शिक्षा की समस्या का उल्लेख करते हुए रचनाकार कहते हैं शिक्षा उच्चतम वस्तु है। किंतु आज उसका स्वरूप इतना विकृत हो चुका है कि वह नितांत अनुपयुक्त हो गई हैं आज कल की शिक्षा हमें समय के साथ बदलना नहीं सिखाती। कौल महँगाई से त्रस्त है। उसकी बेटी भूगोल की पुस्तक और कापियाँ खरीदने के लिए पाँच रुपए माँगती है तो वह खीझ उठता है - ''एक वो जमाना था कि पैसा न लगता था और दिल दिमाग शिक्षा से रोशन हो जाते थे, एक यह वक्त है कि घर धुल जाता है और शिक्षा बच्चों के पास नहीं पटकती। ....भला कोई पूछे, ये लड़कियाँ भूगोल पढ़कर करेगी क्या ? घर के भूगोल का ज्ञान नहीं और दुनिया के भूगोल के पीछे लठ लिए फिरती है।''[11]

'फादर्ज' इस एकांकी में एक विद्यालय की ओर संकेत किया है। आज कल हमारे यहाँ बच्चों को कान्वेट स्कूल में भर्ती करना एक फैशन हो गया है। कान्वेट स्कूल की शिक्षा-पद्धति और आचार-विचार पद्धति बच्चों के लिए कहाँ तक उपयुक्त हो सकती हैं इसका विचार करना आवश्यक है।

सिन्हा साहब अपने बेटे राना को कान्वेट स्कूल में दाखिल करते हैं। राना बचपन में बड़ा डरपोक रहता है। कान्वेट स्कूल में दाखिल होने के बाद वह रोज शिकायत लेकर घर आता

है कि उसे स्कूल के बड़े लड़के पीटते हैं। एक दिन सिन्हा साहब प्रिन्सिपल साहब से मिलकर चर्चा करते हैं तब प्रिन्सिपल बतलाते हैं कि हम छात्रों को लड़के की तरह बने रखना चाहते हैं, न कि लड़कियों की तरह नाजुक-मिजाज।

एक दिन राना एक वकील साहब के बेटे का हाथ तोड़ देता है। वकील साहब की शिकायत पर राना को स्कूल से हटा दिया जाता है। पत्नी स्कूल बदलने की सलाह देती है तो सिन्हा साहब कहते हैं - ''स्कूल बदलने से क्या होगा ? वहाँ क्या गुड़े या शरारती लड़के न होंगे ? स्कूलों में आजकल डिसिपलिन नहीं है।''[12]

अब विचार करने की बात यह है कि कान्वेट स्कूल में यदि लड़कों के चरित्र-गठन की ओर ध्यान दिया जाता, तो न राना जैसा डरपोक लड़का गुंड़ा बनता, न वकील साहब के लड़के का हाथ टूटता। मुख्याध्यापक तथा अन्य सहकारी अध्यापक अनुशासन और चरित्र-गठन की ओर ध्यान नहीं देते हैं। इसी से लड़कों के आपसी झगड़े हो जाते हैं।

4.1.7 परिवार विघटन की समस्या -

संयुक्त परिवार भारतीय समाज में अलग ही स्थान रखता है। आधुनिक काल में शिक्षा तथा विज्ञान का प्रसाद, औद्योगिकरण, देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, नवीन दृष्टिकोण, वैयक्तिकता का विकास आदि के कारण संयुक्त परिवार प्रथा का द्रुत गति से विघटन होने लगा है।

पहले परिवार का मुखिया अपने परिवार को विघटित होने के लिए मौका ही नहीं देता था और सबके एकत्र रहने में ही सबकी भलाई समझता था। परंतु बाद में पढ़े-लिखे सदस्यों को उनकी इच्छा के विरूद्ध परिवार के बंधनों में बाँध रखना भी युक्तिसंगत नहीं माना जाने लगा।

'अश्क' जी ने 'सूखी डाली' इस एकांकी में सुयंक्त कुटुंब की समस्या का वर्णन किया है। आज परिवार की भाषा बदल गई है। पहले जिसे हम परिवार कहते थे, आज संयुक्त परिवार के नाम से जाना जाता है। पुराने बंधन क्रमशः टूटते जा रहे हैं। इस एकांकी के केंद्र में 'बेला' है। बेला नवविवाहित वधू है। वह आधुनिक ढंग की गृहस्थी बसाना चाहती है। ससुराल का रूढ़िबद्ध वातावरण उसे पसंद नहीं है। अपने पति परेश को वह अलग ग्रहस्थी बसाने के लिए

प्रेरित करती है। उस घर के लोग नवीनता को अपनाने में असमर्थ हैं। क्योंकि उनका भौतिक स्तर अति सामान्य है। और बेला प्राचीनता को स्वीकारने में असमर्थ है। फलत: बेला उस परिवार में सूखती है। बेला को हरा रखने का एक ही उपाय है कि उसे अलग रहने दिया जाय। बेला परेश से कहती है - "मुझे लगता है जैसे मैं परायों में आ गई हूँ। कोई मुझे नहीं समझता, किसी को मैं नहीं समझती। ....सब मुझे ऐसी डरती हैं, जैसे मुर्गी के बच्चे चील से।"[13]

इस एकांकी की भूमिका के रूप में लेखक ने स्पष्ट लिखा है - "परिवार हो या सरकारी या गैरसरकारी विभाग अथवा देश - जहाँ भी मुखिया तानाशाह किस्म का सख्तगीर व्यक्ति है, उसके आदेश का पालन करनेवाले साधारण लोग उसके आदेशों की आत्मा को न पकड़, उसके शब्दों को पकड़ लेते हैं और उसका पालन ऐसे मशीनी ढंग से करते हैं कि उनकी रूह ही गायब हो जाती है। और जिनके हितार्थ आदेश जारी होते हैं, उन्हीं का अहित हो जाता है।"[14]

दादा मूलराज 72 वर्ष के हैं। उनके दो बेटे, उनकी बहुएँ, फिर तीन पोते और उनकी तीन बहुएँ हैं। फिर एक पोती है - इंदू। ये सब उस बड़े बरगद की अनेक शाखाओं के रूप में हैं। छोटा पोता परेश नायब तहसीलदार है और उसकी बहू पढ़ी लिखी ग्रॅज्युएट है। परेश के नायब तहसीलदार बनने से गाँव में खानदान की प्रतिष्ठा बढ़ी है परंतु छोटी बहू (परेश की पत्नी) आ जाने से संकट उपस्थित हुआ है।

छोटी बहू पढ़ी-लिखी और अमीरी में पली है। ससुराल में आने पर उसे ससुराल का पुराना फर्निचर, पुरानी नौकरानियाँ, ससुराल के लोगों की आदतें, ससुराल एक भी चीज उसे पसंद नहीं आती है। एक दिन छोटी बहू अपने कमरे के टूटे-फूटे और सड़े-गले फर्निचर को उठाकर बाहर फेंक देती है। जब परेश समझाता है कि "हमारे बुजुर्ग इसी फर्निचर पर बैठा करते थे।"[15]

प्रत्येक स्थिति में बेला को असंतुष्ट देखकर परेश परेशान है। परेश बेला से कहते हैं - "तुम्हें शिकायत थी कोई तुम्हारा आदर नहीं करता, अब तुम्हारा आदर करते हैं। तुम्हें शिकायत थी कि तुम्हें सबसे दबना पड़ता है, अब सब तुमसे दबते हैं। तुम्हें शिकायत थी, तुम सबका काम करती हो, अब सब तुम्हारा काम करते हैं। आदर-सत्कार, आराम न जाने तुम और क्या चाहती हो।"[16]

'सूखी डाली' की समस्या भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। अनेक परिवार इससे पीड़ित हैं। अनेक लोग इसमें पड़े-पड़े सूख रहे हैं।

4.1.8 राजनीतिक समस्या -

आधुनिक काल में राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय माना जाता है। वर्तमान राजनेता अपने आपको जनता के प्रतिनिधि कहते हैं परंतु असल में समाज सेवा के पीछे उनका स्वार्थ ही दिखाई देता है। राजनेता अपनी बात सच कराने के लिए वे लोगों को कई तरह के आश्वासन देते हैं। लेकिन उन आश्वासनों को कभी पूरा नहीं कर पाते हैं। पाँच सालों में एक बार वे लोगों से वोट हासिल करने के लिए घर-घर तक जाते हैं, कभी-कभी वोट खरीद भी लेते हैं। और एक कुर्सी मिल जाने पर वे जनता को भूल जाते हैं। वे अपनी बातों से मुँह फेर लेते हैं। आजकल नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राजनीति में हिस्सा लेते हैं। समाजसेवा का बहाना बनाकर वे अपना घर भरना चाहते हैं।

'अधिकार का रक्षक' इस एकांकी में नेता मि. सेठ चुनाव के लिए इस प्रकार ढोंग रचते हैं (जिनकी करनी कुछ है और कथनी कुछ)। एक ओर तो वे हरिजन सभा के मंत्री से बात करते हुए पीड़ितों और पद्दलितों को ऊपर उठाने का बातें करते हैं। दूसरी ओर अपने नौकर को बूरी तरह गालियाँ देते हैं। उनका दावा है कि हमारे यहाँ बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा की पद्धति अत्यंत पूरानी है। उनके स्वास्थ की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता है। सार्वजनिक रूप से वे एक ओर तो बच्चों को शारीरिक रूप से दंड देने का शाब्दिक विरोध करते हैं। ऐसी ऊँची बातें करनेवाले सेठ का बच्चा जब उसके पास आता है तो उसे झिड़कते हुए कहते हैं - ''ठहर कंबख्त ! ....चल निकल यहाँ से। सूअर ! कंबख्त !''[17] इस प्रकार अपने बच्चों को बेमतलब पीटते हैं।

सरलादेवी से सेठ का दावा करता है कि महिलाओं का उससे अच्छा रक्षक उन्हें वर्तमान उम्मीदवारों में नहीं मिलता है। महिलाओं में नारी मुक्ति की बात कहकर अपने घर में अपनी पत्नी को सताता है। जब कि उसकी पत्नी उसके व्यवहारों से त्रस्त होकर मायके चली जाती है। सेठ कहते हैं भोले-भाले निरीह नौकरों पर अत्याचर होता रहता है, मजदूरों की वेतन के विषय

में शिकायतें करते हैं। यही सेठ अपने नौकर रामलखन को सूअर, हरामखोर और पाजी कहकर पीटता है।

सेठ अपने श्रमिकों के अधिकारों का रक्षक कहता है। सप्ताह में 52 घंटे से अधिक ड्युटी लेने का वह सख्त विरोध करता है जबकि उसके पत्र का संपादक प्रतिदिन तेरह घंटे की ड्युटी देता है। काम करते-करते बेचारे की आँखें खराब हो जाती हैं। जब वह सहायक की माँग करता है तो सेठ उसकी बात का विरोध करता है। पाँच रुपए वेतन बढ़ाने का लोभ दिखाता है बड़े अधिकार के साथ कहता है कि अगर उसे स्वीकार न हो तो काम छोड़ सकता है। एक नहीं दस आदमी मिल जाएंगे। श्री शिवदान सिंह चौहान ने इस एकांकी की व्याख्या करते हुए लिखा है - ''इस एकांकी नाटक में 'अश्क' ने अधिकार प्राप्त वर्ग के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन, दुरंगी नैतिकता का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है। दलितों और शोषितों के प्रति सत्ताधारी वर्ग की मौखिक सहानुभूति और ऊँचे आदर्शों के मंत्रोच्चार का खोखलापन नाटक के वास्तविक दीन-दुखिया पात्रों के प्रति उनके आचरण व्यवहार से मूर्तित हो जाता है।''[18] आज कल के नेता की स्वार्थी वृत्ति इस एकांकी में लेखक ने दिखाई है।

4.1.9 शहरों के आकर्षण की समस्या -

'देवताओं की छाया में' इस एकांकी में अश्क जी ने आज के देहाती नव युवक की समस्या का चित्रण किया है। आज के युवक को शहरों का आकर्षण वातावरण देहात के सहज स्वस्थ जीवन को विद्रुप बना रहा है। सादिक आठवीं कक्षा तक पढ़कर स्वयं को शिक्षित समझने लगा है। और शारीरिक श्रम करने में अपनी मानहानि समझता है। शहरी प्रभाव के कारण वह अपनी पत्नी को गाँव की स्त्रियों की तरह पर्दा नहीं करने देता है। उसके लिए नए फैशन की वस्तुएँ खरीदता है। इस प्रकार शहरी आकर्षण के मोह में वह पूर्वजों से प्राप्त अपनी संपत्ति नष्ट कर डालता है। अंत में सब ओर से विवश होकर मजदूर बनकर वह अपनी जान भी गँवा देता है। इस प्रकार आज देहाती युवकों का शहरी आकर्षण बढ़ रहा है।

कहा जाता है कि भारत वर्ष गाँवों में बसता है लेकिन अब यह अनुभव किया जा रहा है कि शहरों का आकर्षण बढ़ रहा है।

4.1.10 गली-मोहल्ले के झगड़े की समस्या -

जब एक मोहल्ले में पढ़े-लिखे, सफाई पसंद और सभ्य कहनेवाले लोगों के साथ अनपढ़, गंदे और असभ्य लोग रहते हैं तब छोटी-छोटी बातों को लेकर उनमें अक्सर झगड़े होते रहते हैं।

'नानक इस संसार में' एकांकी में एक बंद गली में लगभग सभी शरणार्थी रहते हैं। कुछ शरणार्थी सरकार से मकान पाकर वास्तव करते हैं और कुछ किराये पर। गली के सभी लोग एक-दूसरे से जलते हैं। एक-दूसरे को गालियाँ देते हैं। और मार-पीठ के लिए तैयार हो जाते हैं। 'अंधी गली' में नित्य-प्रति होनेवाले झगड़े की एक झलक इस प्रकार है - ''श्रीमती गुप्ता लहान सिंह को लक्ष्य पर कहती है - ''अंड़े खाकर गली में फेंकते हैं। सारी गली भ्रष्ट कर रखी है। इन लोगों को शरम है, न हया।''[19] इस पर लहानसिंह की पत्नी कहती है - ''शर्म हया वाले दखे लो। टपकी पड़ती है शर्म-हया। बीवी मुँह संभाल के बातें कर। हमें यू. पी. वाले भइये न समझ लेना। हम पंजाबी हैं।''[20] इसी प्रकार श्रीमती सरन कहती है - ''मुँह संभाल कर बात कर कलमुहें ! औरतों के मुँह लगते लाज नहीं आती ?.... बर्र होगी तेरी माँ, तेरी बहन, तेरी बीवी, तेरी....।''[21]

निम्न मध्यवर्गीय लोग कितने निचले स्तर तक पहुँच कर गाली-गलौज देते हैं इसका उत्कृष्ट नमूना है। शहरों में ऐसे दृश्य केवल उन्हें गली मोहल्ले में देखने को मिलते हैं। जहाँ असभ्य और अर्धसभ्य लोगों की बस्ती होती है। लेकिन इसी प्रकार देहातों में कभी पानी को लेकर, कभी कूड़ा-करवट को लेकर, कभी बच्चों के झगड़े को लेकर और इसी तरह अन्य छोटे-मोटे कारणों को लेकर एक-दूसरे की गाली-गलौज और मार-पीट चलती रहती है। गाँव के छोटे-बड़े सभी लोग उसमें सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार 'नानक इस संसार में' रचनाकार ने गली में नित्य प्रति होनेवाले झगड़े के माध्यम से निम्नमध्यवर्गीय जीवन और मनोविज्ञान की झलक देता है।

4.1.11 राष्ट्रभाषा की समस्या -

भारत देश बहुभाषा राष्ट्र है। यहाँ ब्रिटिशों ने डैढ़ सौ वर्ष राज्य किया है, इसी कारण इस देश में अंग्रेजी का थोड़ा बहुत प्रभाव दिखाई देता है। तथा अंग्रेजी भाषा यह आंतर्राष्ट्रीय भाषा है इसी कारण यहाँ भाषा की समस्या आज भी खड़ी है।

भारत की कोई भारतीय भाषा, संपर्क भाषा के रूप में मानी जा सकती है, तो वह हिंदी ही है। भारत में अठारह भाषा हैं, जहाँ तक अन्य भारतीय भाषाओं का प्रश्न है, कुछ थोड़े अपवाद क्षेत्रों को छोड़कर वे सभी अपने-अपने प्रदेशों में ही बोली जाती हैं। जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है वह बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाना, हिमाचल और दिल्ली की भाषा तो है ही। इसके आलावा, असम, बंगाल, उड़िसा, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, कश्मीर, केरल, अंध्रप्रदेश और कर्नाटक में भी अनेक धार्मिक और व्यापारिक कारणों से ज्यादातर समझी और बोली जाती है। सिनेमा ने भी हिंदी के प्रसार-प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अहिंदी भाषा प्रदेशों के शहरों में तो हिंदी का और भी अधिक प्रचार है।

भारत में हिंदी बोलने और समझनेवालों की संख्या सर्वाधिक होने से स्वतंत्रता के पहले से ही उसे राष्ट्रभाषा होने का मान मिला था। भारत की स्वतंत्रता होने के बाद हिंदी को राजभाषा होने का भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। उसके विकास के लिए अनेक योजनाएँ बनाएँ गए। पारिभाषित शब्दा कोष निर्मित किए गए। फिर भी देखा जाता है कि स्वतंत्रता के पच्चीस वर्ष बाद भी वह की कामकाज की भाषा नहीं बन सकी। अंग्रेजी का वर्चस्व अभी भी है।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने 'किसकी बात' एकांकी में कुछ कारणों पर विचार किया है। सबसे पहला कारण हिंदी के शब्द भंड़ार के संबंध में अतिरेकी दृष्टिकोण है। इस एकांकी में एक पंडित जी है। वे हिंदी के संबंध में बहुत कट्टर है। उनका विचार है कि राष्ट्रभाषा से प्रत्येक विदेशी शब्द निकाल देना चाहिए। उर्दू तथा अंग्रेजी का एक शब्द भी उसमें न रहना चाहिए।

पंडितजी के अतिरेकी दृष्टिकोण से बहुत हानि होने की संभावना है। इस लिए पंडितजी के दृष्टिकोण के बिलकुल विपरीत दयानंद विचार व्यक्त करते हैं - ''इस तरह हिंदी भाषा का घेरा, जिसे सारे देश की साझी भाषा होना है, एकदम सीमित हो जाएगा। न केवल अंग्रेजी उर्दू के वे शब्द, जो हमारी जबान में रच गए हैं, हमें अपनाएँ रखने चाहिए, बल्कि अन्य प्रांतीय और क्षेत्रीय भाषाओं से भी चल सकने वाले शब्द लेकर हिंदी भाषा को समृद्ध बनाना चाहिए। तभी भाषा में अभिव्यक्ति की शक्ति, प्रवहमानता और विस्तार आएगा और हिंदी राष्ट्रभाषा की हैसियत से अपना उत्तरदायित्व निभा सकेगी।''[22]

दयानंद के विचार गौर करने का लायक है। हिंदी का शब्द भंड़ार बढ़ाना हो तो उसे संपर्क भाषा का स्थान प्राप्त कर देना चाहिए। दयानंद की तरह व्यापक दृष्टिकोण रखना चाहिए। लेकिन पंडितजी जैसे लोग समझते हैं कि अंग्रेजी उर्दू के शब्द हमारी दासता के चिन्ह हैं। भारत जैसे स्वतंत्र देश को इस दासता के चिह्न को मिटा देना चाहिए। अपनी राष्ट्रभाषा से अंग्रेजी-उर्दू शब्दों का बहिष्कार करना चाहिए। दयानंद इस पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है - ''वे लोग, जो हिंदी में प्रचलित अंग्रेजी उर्दू शब्दों के बदले अप्रचलित शब्द गढ़कर ठोस रहे हैं। कहावतें और मुहावरे तक बदल रहे हैं। देश के उतने ही बड़े शत्रु हैं जितने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का विरोधी।''[23]

भाषा के कट्टरता के बारे में बड़े पंडित और बड़ी बहू में, दयानंद और मृदुला में तथा शंकर और सोनिया में झगड़ा हो जाता है और तीनों की पत्नियाँ ससुराल छोड़कर मायके जाने की तैयारी करती हैं। सोनिया अपनी बोली में जब ''सरम से पानी-पानी हुई।''[24] मुहावरें का प्रयोग करती है, तो शंकर शुद्ध भाषा का धारण करते हुए कहते हैं - ''लज्जा से जल-जल हो गई।''[25] कहने को कहता है। सोनियाँ अपनी दादी-परदादी से चलता आया मुहावरा बदलने को बिल्कुल तैयार नहीं होती है। मृदुल और पंडितजी की बहू भी इसी तरह विरोध करती है।

वास्तव में ऐसे मामलों में कोई भी अतिरेकी दृष्टिकोन विनाशकारी ही सिद्ध होते हैं। इसलिए थोड़ी अपनी और थोड़ी दूसरे की बात को मानकर समझौता कर लेना आवश्यक है। भाषा में रूढ़ विदेशी शब्दों का बहिष्कार न कर समझौता कर लेना आवश्यक है। भाषा में रूढ़ विदेशी शब्दों को बहिष्कार न कर उन्हें अपना लेने से भाषा समृद्ध बनती है। वैसे ही अपनी भाषा के पर्याप्त शब्द उपलब्ध होने पर भी केवल फैशन के तौर पर अंग्रेजी-उर्दू शब्दों का प्रयोग करने से भाषा का सौंदर्य नष्ट होने की संभावना भी है।

4.1.12 अध्यापकों की अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता –

आजकल अध्यापकों की अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता बढ़ रही है। जिन अध्यापकों पर अगली पीढ़ी का भविष्य निर्भर है वे माध्यमिक स्कूलों में ऐसे अध्यापक होने चाहिए,

विद्यार्थियों को केवल किताबी ज्ञान न देकर और उनके चरित्र पर प्रभाव डालना चाहिए। उनके मनोविज्ञान पहचानना चाहिए।

'फादर्ज' एकांकी में सिन्हा साहब कहते हैं "स्कूल बदलने से क्या होगा, वहाँ क्या गुंड़े या शरारती लड़के न होंगे, स्कूलों में आज कल डिसिप्लिन है भी कहीं ? जिन टीचरों पर अगली पीढ़ी का भविष्य निर्भर है, वो क्लर्कों से कम वेतन पाते हैं। ....घर का खर्च चलाने को बेचारे ट्यूशन करते हैं, यहाँ वहाँ पार्ट टाईम करते हैं, कोर्स की किताबों के अलावा कुछ जानते नहीं और मशीनों की तरह पढ़ाते हैं।"[26] इस प्रकार आज की अध्यापकों की वास्तविक स्थिति का वर्णन इस एकांकी में लेखक ने किया है।

4.1.13 सांप्रदायिकता की समस्या -

सन् 1946 ई. में भारत में सांप्रदायिक दंगों की जो आग भड़क उठी थी उसी का यथार्थ चित्रण इस एकांकी में प्रस्तुत किया है। बंबई के एक मुहल्ले में यह खबर फैलती है कि दूसरे मुहल्ले में दंगा हो गया है जिसमें कुछ लोग मारे गए हैं। इसी झूठी खबर के कारण इस मुहल्ले में हिंदू-मुसलमानों को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। देश में सांप्रदायिकत आग भड़क रही है, पशुता के रूप दिखाई देते हैं। जिस प्रकार घृणा और क्रोध की जिस जहरीला वातावरण भारत का स्वतंत्रता-संग्राम चल रहा था। उसी भूमिका में हिंसा और अहिंसा, पशुता और मानवता, क्रूरता और दया, लोलुपता और त्याग का संघर्ष चल रहा था। भयंकर रक्तपात का आयोजन घीसू के मुहल्ले में होता है, उसके प्रति वे छोटा कामकाजी आदमी का कोई लगाव नहीं रखता है। इस प्रकार बदरी कहते हैं - "इसमें तीर मारने की कौनसी बात है ? अपना राज हुआ तो क्या खुशी न मनाए ? इन मुसलमानों ने काले झंड़े लगाए हैं, तो हम तिरंगा न पहराए ?"[27] घीसू कहते हैं - "फहराइए सिर फोड़िए-फोडवाइए !"[28] इस प्रकार हिंदू-मुस्लिम में संघर्ष होते हैं।

4.1.14 वैवाहिक जीवन संबंधी समस्या -

मनुष्य समाजप्रिय प्राणी है। समाज में अनेक तरह के लोग होते हैं। जाति-पाँति, धर्म, रहन-सहन अलग-अलग होते हैं, फिर भी समाज में अनेक लोग इकट्ठा होते हैं और संस्था

स्थापित करते हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार की संस्थाएँ होती हैं। पारिवारिक संस्था, विवाह संस्था और अन्य अनेक सामाजिक संस्थाओं का उद्गम होता है। तो हर एक संस्था अपनी विशिष्टता लेकर आगे बढ़ती है। साथ-ही-साथ उसकी कई समस्याएँ होती हैं।

विवाह दो व्यक्तियों (भिन्न लिंगी) की आत्मा का मिलन है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। जहाँ दो व्यक्तियों में सामंजस्य होता है, वहाँ हमें सुखी और सांसारिक जीवन दिखाई देता है। और दूसरी तरफ पति-पत्नी में यदि किसी भी प्रकार का हो, वहाँ संसार में विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। दोनों को कभी भी पटती नहीं और दोनों एक दूसरे से अलग-अलग होना चाहते हैं और उसी कारण उनके रास्ते अलग-अलग होते हैं, कभी संयोग न होने के लिए।

'दो बहने' इस एकांकी में आजकल समाज में स्त्री-पुरुष के समानाधिकार की चर्चा बहुत चलती है। स्त्रियाँ तो स्त्री स्वातंत्र्य की माँग प्रस्तुत करती हैं परंतु कुछ उदार ह्रदयी पुरुष भी समानाधिकार को मान्यता देते हैं। रमा हरीश से विवाह करना चाहती है। पति-पत्नी के बारे में हरीश के विचार निशा को समझाते हुए रमा कहती है - ''वह नहीं मानता कि ब्याह के बाद पत्नी की सत्ता पति में लीन हो जाती है। उसका विचार है कि ब्याह के बाद पत्नी की सत्ता पति में लीन हो जाती है। उसका विचार है कि ब्याह के बाद पत्नी अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखनी चाहिए। उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करते रहना चाहिए। स्त्री-पुरुष सागर की दो लहरों के समान हैं, चाहे तो साथ-साथ मिलकर, एक होकर चलें यो तो विगत होकर, अपनी-अपनी धुन में बहे जाएँ प्रथाओं और परंपराओं का हरीश पर कोई दबाव नहीं।''[29]

आज समाज में हरीश जैसे उदार-मतवादी पुरुष बहुत कम मिलते हैं। सामान्यत: स्त्री को दासी मानकर उस पर अनेक अत्याचार करनेवाले और अपनी स्त्री से पतिव्रत्य की उपेक्षा करनेवाले पति अधिक मिलते हैं। समाज में अपनी पत्नी के बारे में पुरुष की कुछ अपेक्षाएँ होती हैं। वैसे ही स्त्रियों की भी अपने पति के बारे में कुछ अपेक्षाएँ होती हैं। विवाह के पहले अपने मन में अनेक सपने लेकर स्त्री पति के घर आती है। यदि अपने सपने शीघ्र ही टूट जाएँ तो वह दु:खिनी बनती है। सुहास इसी प्रकार की स्त्री है। पति के बारे में आधुनिक स्त्रियों की अपेक्षाएँ व्यक्त करते हुए कहती है - ''न जाने कितनी लड़कियों के सुख सपने पहली रात ही छिन्न-बिन्न हो जाते

हैं। ....सचमुच हमें जीवन साथी की जरूरत है हमें स्वामी की जरूरत नहीं, जो निरंतर हमें स्वामिशक्ति पर लेक्चर देता है, या जो हमें चुन-चुन कर ऐसी किताबें पढ़ने को दे, जिसमें पतिव्रता नारियों का गुणगान हो और पति को पत्नी का परमेश्वर बताया गया हो। ....जो हमें इसलिए दुःख है कि उसे सहकर हम पतिव्रता कहला सकें, स्वर्ग में अपने लिए सीट रिजर्व करा सकें। ...ऐसे स्वर्ग से नरक भला। स्वर्ग किसने देखा है ? नरक तो रोज देखते हैं। वह नरक इससे बुरा न होगा।''[30]

आजकल नारी-स्वतंत्रता की पुकार सर्वत्र सुनाई देती है। स्त्री जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों से समानता की अपेक्षाएँ रखती हैं।

4.1.15 अंध विश्वास की समस्या -

समाज में भूत-प्रेत, गृह-नक्षत्र, राशि-भविष्य, धार्मिक चमत्कार आदि पर विश्वास रखनेवाले और भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से मुक्त होने के लिए मंत्र-तंत्र आदि पर विश्वास रखनेवाले लोगों की कमी नहीं है। दूसरी तरफ बुद्धिवादी वर्ग भी है, जो ऐसे बातों पर विश्वास नहीं रखते हैं।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने चमत्कार इस एकांकी में चमत्कारों पर किए जानेवाले अंधविश्वासों पर व्यंग्य किया है। प्रस्तुत एकांकी में ईसाई, इस्लामी तथा आर्य समाजी से संबंधित चमत्कारों पर व्यंग्य है।

बाइबल सोसायटी के महरावदार दरवाजे पर ये वाक्य लिखे हैं - ''यीसू मसीह ने कहा उठ। और कुमारी उठ बैठी।''[31] यीसू मसीह की सबसे बड़ी करामत यह थी कि वे मूर्दा को जिंदा कर देते थे। उन्होंने जेरस की मूर्दा बेटी की धुआ और वह उठ बैठी।

एक टोपीवाले ने रसूले पाक की करामातों का बयान किया है - ''कौन नहीं जानता कि खुदावन्दे करीम ने अपने रसूल को सातों आसमानों की सैर कड़ायी और वह भी इतनक कम अर्से में कि जिस दरवाजे से रसूले पाक गए थे उसकी कुण्डी उनके वापस आने पर अभी हिल रही थी।''[32]

चोटीवाला एक आर्य समाजी महर्षि दयानंद के चमत्कारों का वर्णन करते कह रहा था - ''महर्षि दयानंद पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उनके अंगों में अपार शक्ति थी। अपने योग-बल से वे

ऐसी आश्चर्यजनक बातें कर सकते थे। जो दूसरों को चमत्कार मालूम होती थी। जालंधर में टिक्कासाहब की गाड़ी को उन्होंने पीछे से पकड़ा। घोड़े की शक्ति लगाकर थक गए। लेकिन वह तो ब्रह्माचारी का बल था। टस-से-मस न हुई गाड़ी। चमत्कार यह होता है।''[33]

इन विश्वासों के संबंध में समाजशास्त्रियों ने गहरा अध्ययन कर यह सिद्ध दिखाया है कि धार्मिक विश्वासों के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। विश्वासों की निर्मिति के संबंध में कहा गया है - ''इन सभा धार्मिक विश्वासों से यही स्पष्ट होता है कि धार्मिक मर्यादाओं का जन्म हुआ है। ....कोई भी धार्मिक विश्वास शाश्वत नहीं है। ....धार्मिक विश्वास के रूप में प्राणी के विकास के विषय में की गई कल्पना किसी प्रकार का वैज्ञानिक आधार नहीं रखती।''[34]

4.1.16 पारिवारिक सदस्यों के परस्पर संबंधों की समस्या -

परिवार निकटतम रक्तसंबंधियों का समुदाय है। भारतीय समाज का परिवार के प्रति गंभीर दृष्टिकोण दिखाई देता है। परिवार संस्था का उद्‌गम ही मानव की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का फलस्वरूप है। परिवार भारतीय समाज का प्राण है। जन्मत: मनुष्य सामाजिकता से परिचित नहीं होता है। उसे सुसंस्कृत बनाने में परिवार के सभी सदस्यों का सहभाग होता है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है। बचपन, यौवन और बुड़ापे की अवस्था से गुजरते हुए वह समाप्त भी हो जाता है। परंतु उसके परिवार में वंश परंपरागत संतान क्रम आगे चलता है। भारतवासियों ने इस परंपरा को प्राचीन काल से स्वीकार किया है।

भारतीय समाज में परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते हैं। उनकी रूढ़ियाँ, विचार, व्यवहार आदि में समानता दिखाई देती है। मनुष्य को समाजिक रीति-रिवाज तथा परंपराओं की शिक्षा देने में परिवार का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

पति और पत्नी परिवार के मूल आधार हैं। उनके स्नेहपूर्ण संबंधों पर परिवार की शांति अवलंबित रहती है। पूर्व काल में पत्नी पति को देवता-स्वरूप मानकर उसकी पूजा करती थी। पति भी पत्नी के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था। लेकिन आजकल शिक्षा के प्रचार और पश्चिमी सभ्यता के संपर्क ने दोनों को स्वार्थी बना दिया है। आज पति-पत्नी एकत्र रहते हैं हुए भी एक-दूसरे के प्रति व्यवहार भावना शून्य रहता है।

'पापी' एकांकी में छाया शांतिलाल की पत्नी है। छाया कई महीनों से वह यक्ष्मा से पीड़ित है। शांतिलाल पहले-पहले अपनी पत्नी के स्वास्थ्य की खूब चिंता करते हैं। रात दिन उसके पास बैठे रहते हैं। परंतु छाया के जीने की कोई आशा न रहने पर वह दु:खी हो जाता है।

बीमार छाया अपने पति से कुछ अपेक्षाएँ करती है। वह चाहती है कि उसका पति उसके पास रहे। और उसकी देख-भाल करे और सबसे बढ़कर उसे धीरज दे।

छाया की अपेक्षाएँ बिलकुल स्वाभाविक हैं परंतु वे पूरी नहीं हो पाती हैं। बीमारी छाया की सेवा करने के लिए उसकी छोटी बहन रेखा को बुला लेता है। रेखा आने के बाद शांतिलाल छाया की बीमारी की ओर ध्यान देना छोड़कर रेखा के साथ रंगरेलियाँ मनाने लगता है। छाया अनुभव करने लगती है कि रेखा उसके सुनहरे संसार में आग लगा रही है।

रेखा मन ही मन विचार करती है - ''मैं तो बीमार बहन को देखने आयी थी। मैं तो उसका दु:ख बंटाने आई थी। क्या मैं उसका बंटा रही हूँ। वाह। क्या खूब दुख बंटा रही हूँ उसका मैं। मैं उसे मृत्यु के समीप लिए जा रही हूँ। उसके दु:ख की चिनगारी को ज्वाला बना रही हूँ।''[35]

रेखा को अपने कृत्य पर पश्चाताप होता है। रेखा अपने आप संयम रखकर बहन के घर से चली जाती है। दु:ख के आघात से छाया की मृत्यु होती है। शांतिलाल न घर का रहता है न घाट का। न वह पत्नी से एकनिष्ठ रहता है, न वह रेखा से प्रेम प्राप्त कर सकता है।

'तौलिये' एकांकी में पति-पत्नी में संघर्ष होते हैं। सफाई-गंदगी के बारे में परस्पर विरोधी विचार होने लगते हैं। मधु वसंत को हजामत बनाने पर तौलिये से मुँह पोंछते हुए देखती है। परंतु उसकी गलती यह होती है कि स्वतंत्र तौलिये से मुँह पोंछने के बदले वह बदन के तौलिये से मुँह पोंछता है। मधु की इच्छा है कि हजामत का मुँह पोंछने के लिए तौलिये स्वतंत्र रूप से रखे गए हैं। वसंत हजामत का तौलिया देख नहीं सका था। मधु कहती है कि जिस तौलिये से एक ने बदन पोंछा तो उससे दूसरा आदमी अपना बदन पोंछता है तो बीमारी हो सकती है। यह विचार आरोग्य की दृष्टि से सही है। परंतु वसंत का कहना है - ''मुझे गंदगी से घृणा नहीं किंतु मैं गंदगी पसंद नहीं करता। यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज गंदगी से दो चार होना पड़ेगा। फिर इससे घृणा कैसी ? ....स्वच्छता बुरी नहीं, न सुरूचि बुरी है, पर तुम तो हर चीज को सनक की हद तक पहुँचा देती हो और सनक से मुझे चिढ़ है।''[36]

समाज में एक वर्ग दूसरे वर्ग को हमेशा असभ्य गँवार समजता है। ऐसी स्थिति में आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे क्यों भागे ? बचपन से पाए गए संस्कार से जल्द मुक्ति नहीं मिलती। समाज में रहना है तो अपने आदतों को थोड़ा बदलना ही होगा।

4.1.17 ***प्रेम की समस्या -***

प्रेम यह परिकल्पना व्यापक है। एक दूसरे के प्रति प्रेम का आकर्षण जात-पात, उच्च-नीच, समाज का विरोध सभी को लाँघकर विवाह के पवित्र बंधन में बांध देता है। विवाह पूर्व प्रेम में जिम्मेदारी का भाव कम और उन्मुक्तता अधिकाधिक दिखाई देती है। उन्मुक्त प्रेम करनेवाले प्रेमी केवल सौंदर्य और यौवन से प्रेम करते हैं। उनमें हार्दिक प्रेम नहीं होता। ऐसा प्रेम पारिवारिक स्वास्थ्य के लिए घातक होता है। धर्म जाति तथा धन का अभिमान इ. के संबंध में भारतीय समाज में अभिरूढ़िवादी का बहुत बड़े पैमाने पर है। ऐसी अवस्था में धर्म जाती-पाति तथा श्रेणी भिन्नता का विचार करनेवाले युवक-युवतियों के जीवन में समस्या पैदा करता है। ''यों तो पुरुष अथवा नारी के आकर्षण के अनेकों कोण हैं। शारीरिक, स्वास्थ्य, सौंदर्य, यश अथवा ख्याति के अतिरिक्त पुरूषों की लच्छेदार रोमानी, प्यार भरी बातें अथवा करूणा उपजानेवाले पत्र, हमेशा भावुक तरूणियों को आकर्षित करते आए हैं।''[37]

'चुंबक' एकांकी में गौतम एक प्रसिद्ध कवि है। सरिता उसकी कविताओं पर आसक्त होकर पत्र लिखती है। गौतम भी उत्तर के रूप में अपने जीवन के अकेलेपन के बारे में करूणा भरे पत्र लिखता है। गौतम और सरिता सोचती है - ''वो परेशान और उदास है। अकेलेपन का बोझ उनको पीसे जा रहा है तो क्या मैं न जाऊँ उनका दु:ख बँटाने, उनका बोझ हलका करने ?''[38]

सरिता अचानक घर से बहार अकेली निकलती है। नदी-नाले, वन-वीराने पार की हुई आँधी और पानी में दस मील का लंबा ऊबड़-खाबड़ रास्ता केवल एक टूटे से अकेली पार करती है। रास्ते में थोड़ी देर के लिए वह गोपा के यहाँ ठहरती हैं। उसे बात चीत से पता चलता है कि गौतम कवि भी है और शिकारी भी। गौतम की कविताएँ चुंबक हैं। कितन भी दूर से लोह-चून

जैसी युवतियों को अपनी ओर खींचती हैं। यह जानते हैं कि गोपा भी उसके शिकार हो चुकी हैं। चुंबक का जादू सरिता के लिए बना रहता है।

कलाकारों के प्रति इस तरह का भावुक प्रेम अनेक युवतियों में देखने को मिलता है। परंतु प्रेम करने की भावना और प्रेम में अंतर होता है। उसको न समझने से अनेक बार युवतियाँ धोखा खा जाती हैं।

4.1.18 मेहमान की समस्या –

मनुष्य के संस्कारों का प्रभाव उसके आचार विचार पर परिलक्षित होता है। समाज में कुछ लोग पुराने संस्कारवाले होते हैं तो कुछ नए संस्कारवाले होते हैं।

'जोंक' एकांकी में एक कमजोर तबियत के व्यक्ति का चित्रण है। जो अपनी कमजोरी के कारण एक दिन बिन बुलाये मेहमान के चंगुल में फँस जाता है। भोलानाथ सभ्य गृहस्थ है। एक बार अपने एक वतनी को शिष्टाचारवश घर आने का निमंत्रण देता है। उस निमंत्रण को पाकर वह वतनी बनवारीलाल भोलानाथ का मेहमान बनकर आता है तो वह जोंक की तरह चिपक बैठता है। घर की आर्थिक स्थिति खराब होती है और मेहमान घर से हटने का नाम नहीं लेता है। मेहमान के वास्ते पति-पत्नी में संघर्ष होता है। भोलानाथ कहते हैं - ''अब कमला पूछने लगी कि ये है कौन ? मैं क्या बताता ? इतना कह कर चुप हो रहा कि हमारा वतनी है। चारपाइयाँ हमारे पास सिर्फ दो थी। आखिर वह गरीब सख्त गर्मी में भी अंतर फर्श पर सोयी। खयाल था कि दूसरे दिन चला जाएगा, लेकिन पूरे सात दिन रहा और जब गया तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आएगा। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला ....।''[39]

इस प्रकार भोलानाथ और पत्नी, मित्र सभी इस मेहमान से मुक्ति पाने के लिए अनेक प्रकारे की तरकीबें करते हैं। फिर भी मुक्ति नहीं मिलती है। उसकी वृत्ति जोंक जैसी होती है। 'मान न मान मैं तेरा मेहमान वाली उक्ति को चरितार्थ करना ही एसे लोगों का कार्य होता है। शिष्टाचार उनसे कोसों दूर रहता है। अतिथ्य करने की हमारी पुरानी पंरपरा है परंतु आजकल अतिथि भी अपनी मर्यादा का पालन नहीं करते हैं।

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उपेंद्रनाथ 'अश्क' जी के एकांकियों में समसामायिक जीवन की समस्या का वास्तविक चित्रण किया है। भारतीय सामाजिक जीवन को अधिक-अधिक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। समाज जीवन की गंभीर समस्याओं को प्रस्तुत करके तथा उनके हल सुलझाने के लिए लिखे गए हैं। 'अश्क' जी ने समाज के बीच में खड़े होकर उसकी विषमताओं को यथार्थ की भूमि पर रखने का प्रयास किया है। इनके एकांकी नाटकों का क्षेत्र पंजाब रहा है। पंजाब के मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित समस्या को समाज के दर्पण के रूप में दिया गया है। प्रेम और विवाह की समस्या इनके एकांकियों में अधिक बिखरी है। आज के समाज का नग्न ढाँचा 'अधिकार का रक्षक', 'पक्का गाना', 'अंधी गली' आदि एकांकियों में स्पष्ट हो जाता है। इनके एकांकियों में मध्य वर्ग अथवा निम्न वर्ग को समाज का केंद्रबिंदू मानकर उनके समस्या का चित्रण किया है।

4.2 आर्थिक समस्या -

मनुष्य का जीवन सामाजिक ढाँचे में ढला हुआ है और सामाजिक ढाँचा आर्थिक ढाँचे पर। अर्थ मनुष्य के जीवन का मूलभूत आधार है। मनुष्य को जीवन यापन करने के लिए अर्थ का साधन रूप में इस्तेमाल करना पड़ता है। और अर्थ की प्राप्ति के लिए उसे कोई-न-कोई काम करना पड़ता है। अर्थ मनुष्य जीवन का मूलाधार है।

''अर्थ केंद्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण अर्थ ही होता है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति से निश्चित किया जाता है। इस तरह आज अर्थ व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरूदंड बन गया है।''[40]

पेट पालने के लिए आदमी को पैसों की आवश्यकता होती है। किंतु अर्थाभाव भारतीय समाज की भयंकर समस्या है। उसमें भी अगर लालची आदमी हो तो वह पैसों के लिए अपने रिश्ते-नातों तक की फिक्र नहीं करता है। पैसों के लिए आदमी हीनता के प्रदर्शन एवं दुष्कृत्य भी कर सकता है।

डॉ. शैल रस्तोगी के मतानुसार, "आर्थिक दृष्टि से पर-निर्भर नारियों को बड़ी विवशता के साथ जीवनयापन करना पड़ता है। पुरुष के हर प्रकार के अत्याचारों को झेलने के लिए वे बाध्य हो जाती है, क्योंकि और कोई उपाय उनके पास रहता ही नहीं। पति के अत्याचारों का विरोध करने के लिए घर के बाहर वह जा नहीं सकती। हमारे हिंदू घरों में स्त्रियों का पिता के घर भी अधिक दिनों तक रहना अच्छा नहीं समझा जाता। पुरुष आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के कारण समाज में पूरा अधिकार रखता है। वह अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरा विवाह भी कर सकता है किंतु परित्यक्ता पत्नी आसानी से फिर अपना परिवार नहीं बसा सकती। यदि बच्चे हुए तो और भी कठिन मामला हो सकता है।"[41]

4.2.1 बेकारी की समस्या -

'आपस का समझौता' इस एकांकी में आज वर्तमान डॉक्टरों की बेकारी की समस्या का चित्र खींचकर उनके द्वारा की जानेवाली डकैती पर व्यंग्य किया गया है। डॉ. वर्मा दंत चिकित्सक हैं और डॉ. कपूर नेत्र विशेषज्ञ हैं। दोनों में से किसी की भी प्रैक्टिस नहीं चलती। अत: वे आपस में समझौता करते हैं कि वे एक दूसरे के यहाँ रोगी भेजने में साहयता करते हैं। लेकिन परस्पर के सहयोग के लिए भी तो रोगी चाहिए जो उनके पास नहीं है। डॉ. वर्मा, डॉ. कपूर के यहाँ अपना सम्मान बनाने के लिए अपने साले प्रतुल को भजता है। डॉ. कपूर प्रतुल की आँख खराब कर देता है ताकि उसको चश्मा लगवाना पड़े। डॉ. कपूर का कोई संबंधी डॉ. वर्मा निर्णय करता है कि उसके सारे दाँत उखाड़ देता है और मसूड़ों में नासूर कर देता है। धन के लोभ के लिए एक मनुष्य को लाभ की जगह हानि पहुँचाने में नहीं हिचकते हैं। आज आर्थिक प्रवृत्ति इतनी बलवत्ती हो चुकी है कि सेवा भावना और नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है। आज नैतिकता और सेवा भावना का मूल्य पैसा बन चुका है।

डॉ. वर्मा अपने पत्नी से कहता है - "और तुम नहीं जानती, बाहर के रोगियों से कितना लाभ होता है। काम खराब हो जाय तो डर नहीं, बिगड़ जाय तो डर नहीं और अगर अच्छा हो जाए तो बाहर से और भी रोगी आने लगते हैं। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनसे फिस ज्यादा ली जा सकती है।"[42]

हमारे न्याय-विधान में न तो ऐसे दुष्कर्मियों के लिए किसी दंड़ की व्यवस्था है और न इनके शिकार होनेवाले इन्सानों की सुरक्षा का कोई उपाय ही है। डाक्टरों का यह कृत्य समाज के लिए सक्षम एवं महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है।

4.2.2 मजदूरों की समस्या -

'देवताओं की छाया में' इस एकांकी में शोषण ग्रस्त मजदूर जीवन की छोटी-सी झाँकी प्रस्तुत की है। काकूके ढाई सौ कच्चे घरों का एक गाँव है। एक व्यवसाय सोसाइटी ने इसके पास तीन-चार सौ एकड़ ऊसर जमीन सस्ते दामों से खरीद ली है। महँगे दामों में प्लाट बेचकर 'देवनगर' के नाम से एक नई बस्ती का सूत्रपात कर दिया है। देवनगर निकटवर्ती गाँवों के श्रमिक लोग सुबह सात-आठ से शाम के सात-आठ बजे तक सर्दी-गर्मी में काम करते हैं। प्रतिदिन मजदूरी पाँच छः आने मिलती है। काम करनेवाले मजदूरों के बच्चों को दूध नहीं मिलता और सभी दूध देवनगर में चला जाता है। जलाल कहता है - ''गाँव में दूध कहाँ हैं ? दूध तो सब देवनगर चला जाता है, बच्चों तक के लिए नहीं बचता।''[43] इसी मजदूरी के लोभ में उन्हें अपनी जान भी देनी पड़ती है।

4.2.3 रिश्वतखोरी की समस्या -

समाज में जहाँ काला-बाजार चलता है वहाँ साधारणतया रिश्वतखोरी भी चलती है। क्योंकि काले बाजार के जुर्म में जब ये व्यापारी पकड़े जाते हैं तब सरकारी अधिकरियों को रिश्वत देकर अपने काम करवाते हैं। आजकल व्यापारियों की काला-बाजार करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। रिश्वत लेने और देने में सरकारी कर्मचारियों को या व्यापारियों को झिझक महसूस नहीं होती है।

'अश्क' जी ने इस एकांकी में कैप्टन लीकू की रिश्वतखोरी का ऐसा ही नमूना दिया गया है। रिश्वतखोरी के बारे में सामान्य धारणा होती है कि जो साहूकार है, संपन्न व्यक्ति है, वे ही किसी को बंद नोट देकर और किसी को खुले नोट देकर रिश्वत खोरी का दौर जारी रखते हैं। लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं होती है। रिश्तखोरी के लिए परिस्थिति कारणीभूत होती है। लीकू

कहते हैं - ''नहीं नहीं, दाम तो आप बता दीजिए। नहीं तो हम इसे नहीं ले सकते। मिश्र को थुल्मे की जरूरत है। ....पहली तारीख को मैं इसके दाम आपको भिजवा दूँगा।''[44]

'दो कैप्टन' एकांकी में ''उस हृदयहीन नौकरशाहों और उनके चंगुल में फँसे बेबस लोगों की झलक है, जो देशव्यापी दूर्घटनाओं और विपत्तियों में भी नितांत निरपेक्ष भाव अपनी जेबें गर्म करने और जनता के हित खर्च होनेवाले धन और साज-सामान को अपने घरों में पहुँचाने की जुगाड़ कर लेते हैं।''[45]

4.2.4 महँगाई की समस्या -

आज महँगाई की मूल समस्या क्रूरता राक्षस के समान बढ़ती जा रही है। इस महँगाई से मध्यवर्गीय समाज ग्रस्त एवं त्रस्त है। वस्तुओं के दाम हमेशा बढ़ते जा रहे हैं। महँगाई की क्रूरता मनुष्य को मजबूर करती है। मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति को अन्न, वस्त्र, निवास प्राप्त कर लेना मुश्लिक हो गया है।

'अंधी गली' एकांकी में महँगाई ने सबको तोड़ दिया है। बेचारे रामचरण को आधी-आधी रात तक काम करना पड़ता है। क्योंकि परिवार का खर्च चलना अत्यंत कठिन है। कौल साहब के पास पैसे नहीं हैं। वे लड़के और लड़कियों के लिए न जूते और न किताब कापियाँ खरीद सकते हैं। घर में कहीं चावल कमी है तो कहीं शक्कर नहीं है। इस प्रकार महानगरों में महँगाई की समस्या सबसे प्रमुख समस्या बन गई है। आज बढ़ती हुई महँगाई नें अपने अथक परिश्रम के बावजूद भी सामान्य जनता भर पेट भोजन नहीं पा सकती है। अर्थाभाव के कारण जीवन में अर्थव्यवस्था है। आज महँगाई के कारण लोग बेचैन हैं।

निष्कर्ष -

सामाजिक जीवन में आर्थिक समस्या का दायरा बहुत विस्तृत है। इसमें धन से संबंधित बेकारी, रिश्वतखोरी, महँगाई, मजदूरों की समस्याओं का भी विस्तार से विवेचन किया गया है। अर्थ के कारण पति-पत्नी में आपसी संबंध बिगड़ जाते हैं। आज की पूँजीवादी युग में रुपया है तो सब कुछ है और रुपया इन्सान को सब सिखा देता है।

4.3 मनोविज्ञान की समस्या -

मनोविज्ञान अंग्रेजी के 'साइकोलाजी' (Psychology) शब्दा का अनुवाद है। इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'साइके' (Psyche) आत्मा तथा 'लोगस' (Logos) से हुई है। इस प्रकार मनोविज्ञान को आत्मा अध्ययन समझा जाता है।

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। मनोविज्ञान के द्‌वारा ही मानव मन तथा उसके कार्यों को समझा जा सकता है। किसी व्यक्ति ने कौन-कौन-से भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य किया तथा उसके तथाकथित व्यवहार के क्या कारण हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर केवल मनोविज्ञान के द्‌वारा ही प्राप्त हो सकता है।

साहित्य रचनाओं में मानव हृदय की रागात्मक अनुभूति और संकल्पनात्मक अनुभूति का चित्रण किया जाता है। उसमें मानवी जीवन का सुख-दु:खात्मक रूप प्रकट होता है। कुण्ठित मनोवासना, अहम् प्रवृत्ति, लिबिडो, इडिपस, ग्रंथि आदि विषयक मनोविज्ञान के सिद्‌धांतों के जरिए इसका प्रभावी रूप में आविष्कार होता है।''[46]

4.3.1 साहित्य और मनोविज्ञान -

भावों और मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान केंद्र बिंदू है। साहित्य के भिन्न-भिन्न विषयों में मनोविज्ञान का प्रयोग हुआ है। साहित्य मनोभावों की उपज है। मानवी स्वभाव की पूरी जानकारी साहित्यिकों के लिए वांछित है। किसी भी साहित्य रचना में देश काल की परिस्थिति, सभ्यता, आचार तथा साहित्यिक अभिरूचि दृष्टिगोचर होती है।

आधुनिक मनोविज्ञान का विकास नहीं हुआ था तब भी शेक्सपीयर, कालिदास, जायसी, सूर, तुलसी जैसे साहित्यकारों ने मानवी अंतर्वृत्तियों की अभिव्यक्ति अपने साहित्य के कुछ निश्चित सिद्‌धांत प्रस्थापित किए और उसके प्रकाश में कई मनोवैज्ञानिक साहित्यिक कृतियाँ निर्मित हो रही है।

इस प्रकार दोनों का संबंध से जीवन है। दोनों का मानव के मनोविकारों के साथ घनिष्ठ संबंध है। साहित्य और मनोविज्ञान का चोली दामन का संबंध है।

4.3.2 मनोविज्ञान की उपयोगिता -

मनोविज्ञान का उपयोग शैक्षिक, राजकीय, सामाजिक, औद्योगिक, धार्मिक आदि कई क्षेत्रों में होता है।

आज मनोविज्ञान की कई शाखाएँ निर्माण हुई हैं - "बाल मनोविज्ञान (Child Psychology), मनोविकृतिशास्त्र (Abnormal Psychology), चिकित्सा मनोविज्ञान (Clinical Psychology), औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial psychology)।"[47]

आजकल मनोविज्ञान का साहित्य सृजन में भी महान योगदान मिल रहा है। इसी कारण साहित्य में मानव जीवन के सूक्ष्म पहलुओं का यथार्थ चित्रण हो रहा है।

4.3.3 मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान -

भारतीय तत्वज्ञान में मन यह एक स्वतंत्र वस्तु नहीं माना गया है। कंठ, छांदोग्य, श्वेताश्वतर इत्यादि उपनिषदों में मन, बुद्धि, चित्र, अहंकार आदि अंगो के बारे में तात्विक विचार हुआ है। "प्राचीन भारतीय मनोविज्ञान ने जागृत मन की चार अवस्थाएँ मानी हैं - सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति और तुर्या। इनमें से सुषुप्ति और स्वप्न अवस्थाएँ पाश्चात्यों के कल्पना के अनुसार अवचेतन (Subconscious) की है और जागृत तथा तुर्या यह समाध्यवस्था (Superconscious state) है।"[48]

मनुष्य के व्यवहारों का अध्ययन करके व्यवहारों के संबंध में सत्यता एवं विश्वसनीयता से भविष्यवाणी की दशाओं में उनका क्या रूप होता है एवं यह प्रयत्न करता है और मनुष्य के व्यवहारों पर कैसे नियंत्रण रखा जा सकता है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के कुछ कर्तव्य भी हैं -

1. मनुष्य के व्यवहारों को समझना।
2. मनुष्य के व्यवहारों का भविष्य में जो रूप होगा उसका पता लगाना।
3. मनुष्य के व्यवहार पर नियंत्रण रखना।

4.3.4 आधुनिक मनोविज्ञान -

मनोविज्ञान आधुनिक युग की नवीनतम विद्या है। वैसे तो मनोविज्ञान की शुरूआत आज से 2000 वर्ष पूर्व यूनान में हुई। आधुनिक युग का प्रारंभ ईसा की 18 वीं शताब्दी से मानते हैं। मनोविज्ञान का स्वतंत्र अस्तित्त्व 19 वीं शताब्दी में हुआ। परंतु उस समय भी विद्वानों को मनुष्य के चेतन मन का ही ज्ञान था। उन्हें अचेतन मन का ज्ञान नहीं था।

आधुनिक मनोविज्ञान की खोज, चिकित्सा विज्ञान के कार्यकर्ताओं की देन है। इन खोजों की शुरूआत डॉ. फ्रायड ने की। उनके शिष्य अलफ्रेड एडलर, चार्ल्स युंग, विलियम स्टेकिल और फ्रेंकजी ने इसे आगे बढ़ाया। डॉ. फ्रायड स्वयं प्रारंभ में शारीरिक रोगों के चिकित्सक थे। फ्रायड की प्रमुख देन भावनाओं की खोज की है।

मनुष्य का मन अचेतन है। मन के इस भाग में मनुष्य की ऐसी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, स्मृतियाँ और संवेग रहते हैं। जिन्हें उसे बरबस दबाना और भूल पड़ता है। ये दमित भाव तथा इच्छाएँ व्यक्ति के अचेतन मन में संगठित हो जाती हैं। और फिर वे उसके व्यक्तित्व में खिचाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार के दमित भावों, इच्छाओं और स्मृतियों को मानसिक ग्रंथियाँ कहा जाता है। मानसिक रोगी के मन में ऐसी अनेक प्रबल ग्रंथियाँ रहती हैं। इनका रोगी को स्वयं ज्ञान नहीं रहता और उनकी स्वीकृति भी वह करना नहीं चाहता। ऐसे ही दमित ग्रंथियाँ अनेक प्रकार के मानसिक तथा शारीरिक रोगों में व्याप्त होती हैं। हिस्टीरिया का रोग उन्हीं में से एक है। यह रोग कभी-कभी शारीरिक रोग बनकर प्रकट होता है तब उसे रूपांतरित हिस्टीरिया कहा जाता है।

हिंदी नाटकों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण भी यथार्थवाद युग की देन है। 'अश्क' यथार्थवादी के नाते पात्रों से कभी संतुष्ट न रह सकते थे।

" 'अश्क' ने जीवन का गहरा अनुभव प्राप्त किया है। इतिहास के भूले बिसरे गारों से कुछ मुर्दे निकाम्य कर उनमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के बदले उन्होंने वर्तमान समाज के दैनिक जीवन से, जिंदगी की धड़कन से धड़कते पात्र चुने हैं और उन्हें उनके गुणों के साथ ही नहीं, दोषों के साथ भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है।"[49] 'अश्क' जी ने मनोविज्ञान को किसी पोथियों से नहीं लिया है।

जीवन के सीधे गहरे अध्ययन से प्राप्त किया है। अपने एकांकी नाटकों में जिन पात्रों का चित्रण किया है, वे न अतिमानव हैं न अपमानव। वे इंसान हैं दुर्बल-सबल, क्रूर-दयालू, उदर-संकीर्ण, सफल-असफल, प्रसन्न-उदास संघर्षशील जीवन की भीड़ में ठोकरे देनेवाले केवल इंसान हैं।

4.2.5 वासना -

'पापी' एकांकी में शांतिलाल की पत्नी छाया यक्ष्मा से पीड़ित है। शांतिलाल अपनी माँ के दुर्व्यवहार से परिचित है। अतः माँ पर भरोसा न रखकर, वह छाया की छोटी बहन रेखा को उसकी सेवा करने के लिए बुला लेता है। धीरे-धीरे शांतिलाल और रेखा के अनैतिक संबंध बढ़ जाते हैं। छाया अनुभव करने लगती है कि रेखा उसके सुनहरे संसार में आग लगा रही है। अकस्मात एक दिन वह अपनी आँखों से बहन का अनैतिक संबंधों को देखती है और आश्चर्य चकित हो जाती है। यद्यपि वह जानती है कि वह कुछ दिनों की मेहमान है, तथापि अपनी आँखों के सामने अपने घर में आग लगते कैसे देख पाती ? छाया पश्चाताप करती है।

रेखा को अपने आचरण पर पश्चाताप होता है। वह अनुभव करती है कि बहन का दुःख बाँटने की अपेक्षा वह उसे मृत्यु के समीप लिए जा रही है। वह शांतिलाल का घर छोड़ देने का निश्चय करती है। शांतिलाल रेखा से निवेदन करता है कि वह ऐसा न करें। पर रेखा का विवेक अब जाग चुका है, रेखा वहाँ से चली जाती है।

शांतिलाल पापी है। एक ओर अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात करता है, दूसरी ओर वासना के वशीभूत होकर रेखा के जीवन के साथ खेलता है। उसके भोलेपन का अनुचित लाभ उठाता है। छाया के मृत्यु के बाद अनुभव करता है - ''रेखा भी चली गई, छाया भी चली गई, चारों ओर अंधेरा है सिर्फ मैं इस अंधेरे में भटकने के लिए रह गया हूँ - छाया देवी थी, रेखा भी देवी थी, मैं नीच हूँ, मैं पापी हूँ।''[50]

'मैमूना' एकांकी में आमना अपनी वासना के वशीभूत होकर साजिद और अरशद दोनों के प्रति विश्वासघात करती है। आमना सबला है, परंतु साथ ही पतनशील वास्ना की प्रतिमा। आमना पतियों के चुनाव में भूल नहीं करती है। पहले वह रूपए के लिए आकर्षित होकर साजिद से शादी करती है। और बाद में अपनी वासना के कारण नए पुरुषों की ओर आकर्षित होती है।

4.3.6 *वेश्या* -

कोई स्त्री पैसे कमाने हेतु जब अपना शरीर विक्रय करती है तब उसे वेश्या कहते हैं। आर्थिक अभाव के कारण स्त्री इस व्यवसाय को अपनाती है, उसके साथ अन्य कारण भी होते हैं। पिछड़ी जाति का अंधश्रद्धा पर होनेवाला विश्वास, बाल विवाह होना और पति का मर जाना, विधवा होने पर परिवार से कट जाना या अनैतिक मार्ग से चलकर बुरी व्यवस्था में फंस जाना, मनोरूग्णता, फ्री लव्ह आदि के कारण स्त्री यह वेश्या व्यवसाय स्वीकार कर लेती है।

'वेश्या' एकांकी में वेश्याओं के अंतरंग का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। वेश्यायें पेट के लिए व्यवसाय करती हैं, पैसे भी कमाती हैं। परंतु उसे आत्मिक शांति नहीं मिलती। उनके भी दिल होते हैं। उन्हें भी लगता है कि कोई उन्हें सच्चा प्यार करे और परिवारों की तरह वे भी अपना घर बसाएँ। समाज उनके अंतरंग को नहीं पहचानता है। उनका निरादर करता है। उन्हें व्यवसाय से मुक्ति दिलानेवाले सच्चे प्रेमी नहीं मिलते। जवाहर कहते हैं - ''मुरझाये फूल को कौन गले लगाएगा, सूखे गुलाब को कौर हार पिरोयेगा ?''[51] इस प्रकार उनकी गरीबी नहीं हटती, तब तक उन्हें व्यवसाय से मुक्ति नहीं मिल सकती है। वेश्या व्यवसाय हमारे समाज पर लगा हुआ एक कलंक है। जिसको जल्द-से-जल्द मिटाने को कोशिश करनी होगी।

4.3.7 *सेक्स* -

'चुंबक' एकांकी में मूल समस्या सेक्स की है। गौतम भावुक कवि है। अपनी कविताओं से सरिता को मुग्ध कर उसे चाहने लगता है। दोनों का परिचय सिर्फ पत्राचार तक सीमित है। गौतम सरिता और गोपा को अपनी ओर आकर्षित करता है। गोपा कहती है - ''दर्द में बसी हुई मीठी-मीठी बातों का दाना बिखेरकर पंछी को फँसाना जानता है। वह बेचारी क्या जाने कि पंख काट कर वह उसे छोड़ देगा, पिंजरे तक में बंद करके न रखेगा।''[52]

सरिता गौतम के वास्तविक रूप को नहीं जानती है। वह सोच भी नहीं सकती है कि उसके प्रेम का परिणाम क्या होगा ? गौतम के हाथों से उसकी क्या दुर्गति हो सकती है ? वह अपने सपनों में खोई हुई बढ़ती चली जा रही है। गौतम गोपा जैसी संयमित और बौद्धिक युवती के साथ विश्वासघात कर सकता है, उसे सरिता जैसी रोमांटिक युवती को छलने में कितनी देर लगेगी।

गोपा कहती है - ''तुम सरिता से सिर्फ खेल रहे हो, या फिर उससे नहीं तो मुझसे खेल रहे हो ! न जाने और कौन-कौन तुम्हारे इस भयानक खेल की शिकार हैं।''[53]

पुरुष और नारी के आकर्षण के अनेक कोण हैं। शारीरिक स्वास्थ्य, सौंदर्य, यश अथवा ख्याति के अतिरिक्त पुरुषों की लच्छेदार, रोमानी, प्यारभरी बातें अथवा करुणा उपजानेवाले पत्र हमेशा भावुक तरुणियों को आकर्षित करते आए हैं।

'चुंबक' में नायक की चुंबकिय शक्ति के दो कोण हैं तो उससे खिंची चली आनेवाली, लोह चून के जरों सी तरुणियाँ भी यहाँ दो तरह की हैं। सरिता निहायक भावुक है। उसने अपने मन में अपने प्रिय कवि का एक रूप बना रखा और वह उससे प्रेम करती है। जब गोपा के साथ वैसी बात नहीं। उसके पास विश्लेषणात्मक बुद्धि है और जब उसे चुंबकीय वास्तविकता का पता चलता है तो उसका आकर्षण भी मंद हो जाता है। जबकि सरिता ऐसी युवती है, अपने प्रिय कवि के प्रति जिसका आकर्षण यथार्थता की कटुता भी शायद न मिटा पाए।''[54] इस प्रकार आज के युवक भी युवतियों को फसाते हैं।

4.3.8 महत्त्वाकांक्षी -

'देवताओं की छाया में' एकांकी में सादिक और भरी की कथा में गाँव के अध-पढ़े युवक की ट्रेजिड़ी है। सादिक आठवीं कक्षा तक पढ़कर स्वयं को शिक्षित समझने लगा है। शारीरिक काम करने के लिए मानहानी समझता है। वह अपनी भरी से प्रेम करता है। पत्नी को देहाती स्त्रियों की तरह पर्दा नहीं करने देता। सादिक का बेकारी में उसका घर टूट जाता है। रज्जी कहती है - ''उसे तो उनकी (बस्ती के संपन्न लोगों की) नकल की पड़ी हुई है - मैं इस पर्दा न करने दूँगा, मैं इसे सैर करने ले जाऊँगा, यह कुछ पढ़ती नहीं.... पूछे कोई, तूने आठ जमातें पास कर कौन-सी क्लट्टरी कर ली है ? .... दो एक बार शहर गया। वहाँ से खुशबूदार साबुन, तेल न जाने क्या फिजूल की चीजें ले आया। जो दस बीघे जमीन थी.... अमीरों की बराब्ररी कर सकते हैं ?''[55] इस प्रकार आजकल युवकों का फैशन करने की प्रवृत्ति और शहरी आकर्षण बढ़ रहा है। आज देहातों का स्वच्छ जीवन विद्रुप हो रहा है।

4.3.9 ***सनक*** -

'तौलिये' इस एकांकी में 'अश्क' जी ने एक पारिवारिक संघर्ष के कारण 'सफाई की सनक' की समस्या चित्रित किया है। मधु और वसंत के घर की यह कहानी है। वसंत मध्यवर्गीय है और मधुमालती अभिजात्य कुल की है। सनकी व्यक्ति जिंदगी का सच्चा मजा स्वयं तो लूट नहीं सकता और दूसरों को भी लूटने नहीं देता। विपरीत स्वभाववाले पति-पत्नी का यह झगड़ा है। मधुमालती पर सफाई, सभ्यता, शिष्टाचार की सनक सवार है परंतु उनके पति वसंत से हर बार उसकी सनक सँभाली नहीं जाती है। यह संघर्ष बढ़ जाता है। जब वसंत को हजामत बनाने पर तौलिये से मुँह पोंछते हुए देखते हैं। परंतु गलती यह होती है कि स्वतंत्र तौलिये को मुँह पोंछने के बदले वह बदन के तौलिये से पोंछता है। इसी बात पर पति-पत्नी में संघर्ष होता है। मधु कहती है - ''लेकिन मैं पूछती हूँ, इसमें दोष क्या है ? जब हम खरीद सकते हैं तो क्यो न दस-दस तौलिये रखें। कल, भगवान न करे, हम इस योग्य न रहे तो मैं आपको दिखा दूँ, किस तरह गरीबी में भी सफाई रखी जा सकती है....लेकिन जिस तौलिये से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे किस तरह अपना शरीर पोंछ सकता है ?''[56]

सुरूचि, सभ्यता के नाम पर होने वाले इन बंधनों से बसंत को घृणा है। जिंदगी को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड़ना नहीं चाहता है। वसंत को सफाई तो पसंद है परंतु मधु की सनक से मात्र बेहद चिढ़ है। वसंत कहते हैं - ''और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है ? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नारायण एक ही खिलाफ में बैठे जाते थे। ....अब मित्र आते हैं। अलग-अलग कुर्सियों पर बैठे जाते हैं। एक-दूसरे पर बोझ मालूम होता है। चिड़िया तक तो फटकने नहीं देती तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूँ।''[57] इस प्रकार लेखक ने मानवी स्वभाव दोष का मार्मिक उद्‌घाटन किया है। समस्या केवल दो विपरीत स्वभावाले मधु-वसंत की नहीं बल्कि दो प्रकार से सामाजिक संस्कारों के दृष्टिकोण के संघर्ष की भी है।

निष्कर्ष -

'अश्क' जी के 'चुंबक' इस एकांकी में गोपा, सरिता और गौतम के मनोविज्ञान का सुंदर चित्र खिंचा है । इनके एकांकी नाटक में रंग-रंग के इंसान अपनी आशाओं, निराशाओं, हसरतों, अरमानों, मनोवेगों, और ग्रंथियों के साथ मिलते हैं । उनके एकांकियों में पात्र जीवन की आशा, निराशा, द्वंद्व, संघर्ष, मनोवेग, सुख-दुःख, चिंता आदि का अत्यंत सफल चित्रण हुआ है । समस्याओं को प्रस्तुत कर विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति पैदा करना 'अश्क' जी की विशेषता है ।

'अश्क' जी के मनोविज्ञान के नाटक के बारे में अमृत बाजार पत्रिका के अनुसार - "We fell, having read these plays that we are now greater as men ad women, having known some thing which we saw yet did not know. We feel that our own life has become richer and deeper after having finished these plays. And it is here that Ashk emerges as a great playwright."[58]

संदर्भ सूची

1. डॉ. देवमणि ऊर्फ मीना मिश्रा, संत साहित्य में भावमूल्य, पृ. 23
2. मैकाश्वर एवं चार्लस एच्. पेज, हिंदी अनुवादक जी विश्वेश्वरया, पृ. 5
3. धर्मराज सिंह, अरूणाचल की आदि जन-जाति का समाज भाषिकी अध्ययन, पृ. 54
4. डॉ. विमल भास्कर, हिंदी में समस्या साहित्य, पृ. 42
5. डॉ. राजपाल शर्मा, हिंदी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 40
6. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 339
7. डॉ. उमाशंकर सिंह, समस्या नाटककार 'अश्क', पृ. 72
8. उपेंद्रनाथ 'अश्क', अंधीगली, पृ. 121
9. वही, पृ. 90
10. वही, पृ. 38
11. डॉ. उमाशंकर सिंह, समस्या नाटककार 'अश्क', पृ. 70
12. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 286
13. डॉ. उमाशंकर सिंह, समस्या नाटककार 'अश्क', पृ. 78
14. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 248
15. वही, पृ. 449
16. वही, पृ. 70
17. डॉ. उमाशंकर सिंह, समस्या नाटककार 'अश्क', पृ. 72
18. वही, पृ. 73
19. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 444
20. वही, पृ. 444
21. वही, पृ. 443
22. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 297

23. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 298
24. वही, पृ. 298
25. वही, पृ. 298
26. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 343
27. वही, पृ. 277
28. वही, पृ. 278
29. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पक्कागाना संग्रह, पृ. 444
30. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 223
31. वही, पृ. 208
32. वही, पृ. 208
33. वही, पृ. 209
34. वही, पृ. 209
35. वही, पृ. 256
36. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 88
37. वही, पृ. 222
38. वही, पृ. 234
39. वही, पृ. 248
40. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिंदी कहानियों में जीवन मूल्य, पृ. 10
41. डॉ.ल रस्तोगी, हिंदी उपन्यासों में नारी, पृ. 223
42. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 528
43. वही, पृ. 412
44. वही, पृ. 412
45. डॉ. एम्. के. गाडगील, हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 165
46. डॉ. शिवजराम माली, स्वच्छतावादी नाटकों में मनोविज्ञान, पृ. 34

47. डॉ. शिवजराम माली, स्वच्छतावादी नाटकों में मनोविज्ञान, पृ. 32
48. वही, पृ. 31
49. जगदीशचंद्र माथुर, नाटककार 'अश्क', पृ. 124
50. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 465
51. डॉ. उमाशंकर सिंह, समस्या नाटककार 'अश्क', पृ. 28
52. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 243
53. वही, पृ. 244
54. वही, पृ. 233
55. डॉ. जगदीशचंद्र माथुर, नाटककार 'अश्क', पृ. 128
56. उपेंद्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी संग्रह, पृ. 85
57. वही, पृ. 86
58. डॉ. जगदीशचंद्र माथुर, नाटककार 'अश्क', पृ. 133